रूढ़िगत नैतिकता आधुनिक जीवन का मार्गदर्शक नहीं हो सकती है

"परंपरा के बिना कला, चरवाहे के बिना भेड़ों के झुंड की तरह है।" यह नवाचार के बिना लाश के समान है।

— विंस्टन चर्चिल

नैतिकता, मानव सभ्यता का एक स्थायी पहलू रही है, जो **सामाजिक मानदंडों और व्यक्तिगत आचरण का मार्गदर्शन** करती है। **परंपरा, सांस्कृतिक मानदंडों और धार्मिक विश्वासों** में निहित रूढ़िगत नैतिकता, लंबे समय से नैतिक निर्णय लेने के लिये एक **दिशासूचक के रूप में कार्य** करती रही है। हालाँकि, आधुनिक विश्व के जटिल परिदृश्य में, जिसमें **तीव्र तकनीकी प्रगति, सांस्कृतिक विविधिता एवं बदलते सामाजिक मूल्य** शामिल हैं, केवल पारंपरिक नैतिकता असंख्य नैतिक दुविधाओं का समाधान करने के लिये अपर्याप्त है।

नैतिकता स्थिर नहीं है, यह बदलते **सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय कारकों** की प्रतिक्रिया में समय के साथ विकसित होती है। रूढ़िगत नैतिकता एक निश्चित समय में किसी विशेष समाज या समुदाय के मूल्यों और मानदंडों को प्रतिबिंबित करती है। ऐतिहासिक रूप से,रूढ़िगत नैतिकता ने समाजों के भीतर स्थिरता और सामंजस्य प्रदान किया है, पारस्परिक व्यवहार, **न्याय एवं शासन के लिये दिशा-निर्देश** प्रदान किये हैं। हालाँकि, जैसे-जैसे समाज अधिक परस्परता से जुड़ते हुए अधिक विविधितापूर्ण होते जाते हैं, और साथ ही रूढ़िगत नैतिकता की सीमाएँ अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती हैं।

रूढ़िगत नैतिकता की मूलभूत चुनौतियों में से एक इसकी सापेक्षता है। जिसे एक संस्कृति या समयावधि में नैतिक या नैतिकतापूर्ण माना जाता है, उसकी दूसरी संस्कृति या समयावधि में निंदा की जा सकती है। उदाहरण के लिये **दासप्रथा,भेदभाव एवं पितृसत्ता** जैसी प्रथाएँ कभी व्यापक रूप से स्वीकार की जाती थीं, लेकिन अब इन्हें **मानवाधिकारों के उल्लंघन के रूप में सार्वभौमिक रूप से निंदा** की जाती है। इसलिये,रूढ़िगत नैतिकता में सार्वभौमिकता का अभाव होता है और यह नैतिक सापेक्षवाद को जन्म दे सकती है, जहाँ **नैतिकता संस्कृति से प्रभावित** होती है और मनमाने ढंग से निर्धारित होती है। नैतिक सापेक्षवाद एक ऐसा दृष्टिकोण है जो किसी भी **वस्तुनिष्ठ, निरपेक्ष या सार्वभौमिक नैतिक सत्य के अस्तित्व को अस्वीकार** करता है। इसके स्थान पर यह तर्क दिया जाता है कि जिसे नैतिक माना जाता है वह **व्यक्ति के संदर्भ और सांस्कृतिक पालन-पोषण पर निर्भर** करता है।

कुछ संस्कृतियों में एकाधिक पति-पत्नी रखना **(बहुविवाह)** नैतिक रूप से स्वीकार्य है, जबकि अन्य में, इसकी निंदा की जाती है। नैतिक सापेक्षवाद यह मानता है कि जिसे नैतिक माना जाता है, वह संस्कृतियों एवं ऐतिहासिक अवधियों में भिन्न हो सकता है।

कुछ संस्कृतियों में **पशु मांस खाना** नैतिक रूप से स्वीकार्य माना जाता है, जबकि अन्य संस्कृतियाँ शाकाहारी या वीगन आहार का सेवन करती हैं। मांस उपभोग की स्वीकृति या अस्वीकृति सांस्कृतिक मानदंडों और व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर भिन्न होती है।

इसके अतिरिक्त, पारंपरिक नैतिकता प्रायः तकनीकी प्रगति एवं वैश्वीकरण से उत्पन्न होने वाले नैतिक मुद्दों को संबोधित करने में विफल रहती है। डिजिटल युग में,**गोपनीयता अधिकार,कृत्रिम बुद्धिमत्ता नैतिकता तथा पर्यावरणीय स्थिरता** जैसे मुद्दों को पारंपरिक रीति-रिवाज़ों के साथ-साथ मानदंडों से परे नैतिक ढाँचे की आवश्यकता होती है। पारंपरिक नैतिकता इन **जटिल नैतिक दुविधाओं** के समाधान में सीमित मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है, जिससे व्यक्तियों और समाजों को प्रभावी ढंग से संबोधित करने हेतु अपर्याप्त रूप से सुसज्जित किया जा सकता है।

जबकि पारंपरिक नैतिकता समुदाय के भीतर **अपनेपन और पहचान की भावना** जागृत करती है, यह अनुचित प्रथाओं और अन्याय को भी बनाए रख सकती है। पारंपरिक रीति-रिवाज़ तथा मानदंड मौजूदा सत्ता संरचनाओं को मज़बूत कर सकते हैं, अल्पसंख्यक समूहों को हाशिए पर डाल सकते हैं, और साथ ही सामाजिक प्रगति को बाधित कर सकते हैं। उदाहरण के लिये, पारंपरिक नैतिकता द्वारा निर्धारित **कठोर लैंगिक भूमिकाओं ने ऐतिहासिक रूप से महिलाओं के अधिकारों और अवसरों को सीमित** कर दिया है, जिससे **लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय में बाधा उत्पन्न** होती है।

इसके अतिरिक्त, पारंपरिक नैतिकता **व्यक्तिगत स्वायत्तता एवं आलोचनात्मक सोच** में बाधा उत्पन्न सकती है। परंपरा एवं सांस्कृतिक मानदंडों का अंधानुकरण स्थापित मान्यताओं पर प्रश्न उठाने या उन्हें चुनौती देने से हतोत्साहित कर सकता है, और साथ ही बौद्धिक जिज्ञासा एवं नवाचार को दबा सकता है। तेज़ी से बदलती दुनिया में, जहाँ नए विचार और दृष्टिकोण लगातार उभर रहे हैं, पारंपरिक नैतिकता का आलोचनात्मक मूल्यांकन एवं अनुकूलन करने में असमर्थता परिवर्तन के प्रति ठहराव और प्रतिरोध को जन्म दे सकती है।

प्राचीन भारत में लोग अपनी जाति के आधार पर व्यवसाय अपनाते थे। **कठोर जाति व्यवस्था** न केवल उनके व्यवसाय को निर्धारित करती थी बल्कि यह भी निर्धारित करती थी कि वे किससे विवाह कर सकते हैं। जबकि यह प्रणाली पारंपरिक नैतिकता के एक रूप के रूप में कार्य करती थी, इसने **व्यक्तिगत**

स्वायत्तता तथा व्यक्तिगत विकास एवं पसंद के सीमित अवसरों को प्रतिबंधित कर दिया। आज की वैश्वीकृत तथा परस्पर जुड़ी दुनिया में,जाति के आधार पर ऐसे कठोर विभाजन प्रगति एवं नवाचार में बाधा उत्पन्न करेंगे।

इसके अतिरिक्त,पारंपरिक नैतिकता प्रायः **धार्मिक विश्वासों** से प्रभावित होती है,जो **बहुलवादी समाजों** में विभाजनकारी एवं बहिष्कारकारी हो सकती है। धार्मिक सिद्धांत ऐसे नैतिक नियमों का निर्धारण कर सकते हैं जो **धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों** या विभिन्न धर्मों अथवा किसी भी धर्म को न मानने वाले व्यक्तियों के अधिकारों के साथ असंगत हों। बहुसांस्कृतिक समाजों में,जहाँ **धार्मिक विविधता** व्याप्त है, केवल धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित **पारंपरिक नैतिकता पर निर्भर रहना असहिष्णुता एवं संघर्ष को बढ़ावा** दे सकता है।

पारंपरिक नैतिकता के विपरीत, जो सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ पर निर्भर है,तर्कसंगतता तथा सार्वभौमिक नैतिकता आधुनिक जीवन में **नैतिक निर्णय लेने के लिये अधिक मज़बूत आधार** प्रदान करती है। तर्कसंगतता में **आलोचनात्मक सोच, तार्किकता एवं साक्ष्य-आधारित विश्लेषण शामिल** है, जो व्यक्तियों को नैतिक दुविधाओं का निष्पक्ष मूल्यांकन करने तथा सूचित निष्कर्ष पर पहुँचने में सक्षम बनाता है।

इसके अतिरिक्त, सहानुभूति **नैतिक निर्णय** लेने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो व्यक्तियों को दूसरों के दृष्टिकोण एवं अनुभवों को समझने और उन पर विचार करने हेतु सक्षम बनाती है। **सहानुभूति करुणा, सहयोग एवं नैतिक एकजुटता** को बढ़ावा देती है, साथ ही विभिन्न समुदायों में सामाजिक एकता और पारस्परिक सम्मान को भी बढ़ावा देती है।

जबकि **पारंपरिक नैतिकता की अपनी सीमाएँ** हैं, इसे पूरी तरह से खारिज करना गलत होगा। पारंपरिक नैतिकता समाजों की सामूहिक समझ एवं सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है, जो **मानवीय मूल्यों और सामाजिक मानदंडों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि** प्रदान करती है। हालाँकि, समकालीन चुनौतियों का सामना करते हुए, पारंपरिक नैतिकता को आधुनिक नैतिक ढाँचों द्वारा पूरित किया जाना चाहिये जो **तर्कसंगतता, सार्वभौमिकता** एवं **सहानुभूति** को प्राथमिकता देते हैं।

शिक्षा पारंपरिक नैतिकता एवं आधुनिक नैतिकता के बीच के अंतराल को पाटने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।**आलोचनात्मक चिंतन कौशल, नैतिक तर्क एवं सांस्कृतिक साक्षरता** को बढ़ावा देकर, शिक्षा व्यक्तियों को सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों को अपनाने के साथ-साथ पारंपरिक रीति-रिवाज़ों और मानदंडों के साथ आलोचनात्मक रूप से जुड़ने में सक्षम बनाती है।

इसके अतिरिक्त, **नैतिक सहमति एवं सामाजिक सामंजस्य** को बढ़ावा देने के लिये विविध हितधारकों के बीच संवाद और सहयोग आवश्यक है। बहुलवादी समाजों में, जहाँ **सांस्कृतिक, धार्मिक एवं वैचारिक मतभेद प्रचुर मात्रा** में होते हैं, प्रतिस्पर्द्धी नैतिक दावों एवं मूल्यों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये सम्मानजनक संवाद तथा आपसी समझ अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है।

रूढ़िगत नैतिकता लंबे समय से मानव आचरण के लिये मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती रही है, तथा समाज में स्थिरता और सामंजस्य प्रदान करती रही है।हालाँकि, तेज़ी से हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी परिवर्तन के सामने, आधुनिक जीवन की जटिल नैतिक दुविधाओं को दूर करने के लिये केवल रूढ़िगत नैतिकता अपर्याप्त है। नैतिकता के विकास के लिये एक **अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण की आवश्यकता** है जो पारंपरिक ज्ञान को तर्कसंगतता,सार्वभौमिकता और सहानुभूति पर आधारित **आधुनिक नैतिक ढाँचे के साथ एकीकृत** हो।

आलोचनात्मक सोच को प्रोत्साहित करके, सार्वभौमिक नैतिकता को अपनाकर और सहानुभूति दिखाकर, हम न्याय, निष्पक्षता एवं मानवीय गरिमा का सम्मान करते हुए आधुनिक विश्व की चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं। हालाँकि पारंपरिक नैतिकता ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण रही है, लेकिन वर्तमान में इसकी सीमाएँ स्पष्ट हैं। जैसे-जैसे समाज प्रगति करता है, हमारे नैतिक ढाँचे भी विकसित होने चाहिये। तर्कसंगतता, सार्वभौमिकता एवं सहानुभूति के संयोजन से, हम आधुनिक नैतिक दुविधाओं को अधिक प्रभावी ढंग से संबोधित कर सकते हैं। परंपरा एवं आधुनिक नैतिकता के बीच के अंतराल को समाप्त करने के लिये शिक्षा और संवाद महत्त्वपूर्ण हैं। अंततः, नैतिकता निरंतर आत्मनिरीक्षण एवं समायोजन की एक प्रक्रिया है। हम एक ऐसे समाज की ओर प्रगति कर सकते हैं जो अधिक समतापूर्ण और समावेशी हो, यदि हम इसके प्रति दयालुतापूर्ण और ग्रहणशील दृष्टि रखें।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/customary-morality-cannot-be-a-guide-to-modern-life